

पटना उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में

गुल हसन मियां

बनाम

आस मोहम्मद और एक अन्य

2016 की दीवानी विविध क्षेत्राधिकार संख्या 1513

29 अगस्त, 2024

(माननीय न्यायमूर्ति श्री अरुण कुमार झा)

विचार के लिए मुद्दा

वादी द्वारा दायर संशोधन आवेदन को खारिज करने वाला आक्षेपित आदेश संधारणीय है या नहीं?

हेडनोट्स

सिविल प्रक्रिया संहिता---आदेश 6 नियम 17---वादों में संशोधन बनाम परिसीमा और परीक्षण का प्रारंभ---- आक्षेपित आदेश को रद्द करने के लिए याचिका जिसके तहत विद्वान परीक्षण न्यायालय ने याचिकाकर्ता/वादी द्वारा स्वामित्व की घोषणा के लिए लंबित मुकदमे में दायर संशोधन आवेदन को खारिज कर दिया---संशोधनों के माध्यम से, याचिकाकर्ता/वादी ने उत्तरदाता संख्या 1 द्वारा उत्तरदाता संख्या 2 के पक्ष में निष्पादित दो बिक्री विलेखों को शून्य और अमान्य घोषित करने की मांग की।

निर्णय: संशोधनों को मुद्दों के निर्धारण के बाद तथा वादी के साक्ष्य के स्तर पर प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है--- तथापि, कुछ शर्तों के अधीन परीक्षण के आरंभ होने के बाद भी संशोधनों की अनुमति दी जा सकती है--- सामान्य नियम के रूप में, सभी संशोधनों की अनुमति दी जानी चाहिए जो पक्षों के बीच वास्तविक विवाद के निर्धारण के लिए आवश्यक हैं--- दलीलों में संशोधन के लिए आवेदन को केवल इसलिए अस्वीकार नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि इसका इस आधार पर विरोध किया गया है कि यह सीमा द्वारा वर्जित है, इसके विपरीत, आवेदन पर इस बात को ध्यान में रखते हुए विचार किया जाना चाहिए कि न्याय के हित में ऐसे संशोधन को अनुमति देने या अस्वीकार करने में न्यायालय के पास निहित विवेकाधिकार है--- वर्तमान मामले में, वादी परिणामी राहत की मांग कर रहा है और इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता कि उक्त राहत को संशोधन के माध्यम से राहत भाग में शामिल नहीं किया जा सकता क्योंकि यह पक्षों के बीच वास्तविक विवाद के निर्धारण के

लिए आवश्यक प्रतीत होता है--- यह नहीं कहा जा सकता कि इस स्तर पर संशोधन की अनुमति देने से दूसरे पक्ष के साथ अन्याय होगा क्योंकि यह अभी भी वादी के साक्ष्य आरंभिक चरण में है---मांगा गया संशोधन वाद की प्रकृति में परिवर्तन नहीं करेगा और यदि इसे अनुमति नहीं दी जाती है, तो इससे अनावश्यक रूप से मुकदमों की बहुलता हो जाएगी---पक्षकारों के बीच वास्तविक विवाद के निर्धारण के लिए भी संशोधन आवश्यक प्रतीत होता है---आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है---याचिका स्वीकृत की जाती है।
(पैरा- 7, 8, 10, 12, 15, 16)

न्याय दृष्टान्त

बलदेव सिंह एवं अन्य बनाम मनोहर सिंह एवं अन्य, (2006) 6 एससीसी 498; एल.जे. लीच एंड कंपनी लिमिटेड बनाम जार्डइन स्किनर एंड कंपनी, एआईआर 1957 एससी 357; टी.एन. अलॉय फाउंड्री कंपनी लिमिटेड बनाम टी.एन. इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड, (2004) 3 एससीसी 392

.....संदर्भित।

भारतीय जीवन बीमा निगम बनाम संजीव बिल्डर्स (पी) लिमिटेड, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1128; पंकजा एवं अन्य बनाम येलप्पा (मृत) एलआरएस एवं अन्य, (2004) 6 एससीसी 415; रागु थिलक डी. जॉन बनाम एस. रायप्पन (2001) 2 एससीसी 472 पर भरोसा।

अधिनियमों की सूची

भारतीय संविधान, सिविल प्रक्रिया संहिता

मुख्य शब्दों की सूची

वादों में संशोधन----मुकदमे की शुरुआत----सीमा----मुकदमे की प्रकृति---न्याय का हित--- पक्षों के बीच वास्तविक विवाद का निर्धारण----मुकदमों की बहुलता।

प्रकरण से उत्पन्न

विद्वान मुंसिफ-॥, सीवान द्वारा स्वत्व वाद संख्या 64/2014 में दिनांक 08.09.2016 को पारित आदेश जिसके तहत विद्वान विचारण न्यायालय ने दिनांक 04.08.2016 को संशोधन याचिका को खारिज कर दिया।

पक्षकारों की ओर से उपस्थिति

याचिकाकर्ता/ओं के लिए: श्री अजय कुमार पांडे, अधिवक्ता

उत्तरदाता/ओं के लिए: श्री अजय मिश्रा, अधिवक्ता, श्री बबलू कुमार झा, अधिवक्ता

रिपोर्टर जिनके द्वारा हेडनोटस बनाया गया: घनश्याम, अधिवक्ता

माननीय पटना उच्च न्यायालय का निर्णय/आदेश

**पटना उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में
2016 की दीवानी विविध क्षेत्राधिकार संख्या 1513**

=====

गुल हसन मियां, पिता-स्वर्गीय सहबान मियां, निवासी- गाँव सिसवन, थाना नौतन, डॉ.
जगदीशपुर कोठी, जिला सिवान।

... .. याचिकाकर्ता/ओं

बनाम

1. आस मोहम्मद, पिता-स्वर्गीय सहबान मियां
2. दारोगा मियां, पिता-स्वर्गीय हदीस मियां दोनों निवासी- गाँव सिसवन, थाना नौतन डॉ. जगदीशपुर कोठी, जिला सिवान।

... .. उत्तरदाता/ओं

=====

उपस्थिति:

याचिकाकर्ता/ओं के लिए	:	श्री अजय कुमार पाण्डे, अधिवक्ता
उत्तरदाता/ओं के लिए	:	श्री अजय मिश्रा, अधिवक्ता
		श्री बबलू कुमार झा, अधिवक्ता

=====

गणपूर्ति: माननीय न्यायमूर्ति श्री अरुण कुमार झा

मौखिक निर्णय

दिनांक: 29-08-2024

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और उत्तरदाताओं के विद्वान अधिवक्ता को सुना और मैं वर्तमान याचिका को प्रवेश के चरण में ही निपटाने का इरादा रखता हूँ।

2. तत्काल याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत विद्वान मुन्सिफ-II, सिवान द्वारा 2014 के स्वत्व वाद संख्या 64 में पारित आदेश को रद्द करने के

लिए दायर की गई है, जिसके तहत और जिसके अंतर्गत विद्वान विचारण न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 6 नियम 17 (जिसे इसके बाद 'संहिता' के रूप में संदर्भित किया गया है) के तहत वादी/याचिकाकर्ता द्वारा दायर याचिका को खारिज कर दिया।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष वादी है और उत्तरदाता प्रतिवादी हैं। वादी ने वाद की अनुसूची में उल्लिखित वाद भूमि पर स्वामित्व की घोषणा के लिए एक मुकदमा दायर किया है। मामला वादी के साक्ष्य के स्तर पर था और वादी की मुख्य परीक्षण दायर की गई थी और उस समय, संहिता के आदेश 6 नियम 17 के तहत संशोधन के लिए एक याचिका वादी की ओर से पैराग्राफ 1,8,13 में संशोधन के लिए प्रार्थना करते हुए और शिकायत के राहत भाग में दायर की गई है। विद्वान वकील ने आगे दलील दी कि इन संशोधनों के माध्यम से, प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा प्रतिवादी संख्या 2 के पक्ष में निष्पादित दिनांक 09.08.1982 के दो बिक्री विलेखों, संख्या 12929 और 12930, को शून्य और अमान्य घोषित करने की मांग की गई है। विद्वान अधिवक्ता आगे प्रस्तुत करता है कि पैराग्राफ 9 के शिकायत में उचित आधार पहले ही रखा जा चुका है। विद्वान अधिवक्ता आगे प्रस्तुत करते हैं कि वादी को वर्ष 2014 में बिक्री विलेखों के निष्पादन के बारे में पता चला और उसने शिकायत में इस तथ्य का उल्लेख किया, लेकिन असावधानी और खराब मसौदे के कारण, राहत भाग में इसका उल्लेख नहीं किया जा सका और उसके बाद, संशोधन याचिका 04.08.2016 पर दायर की गई है। विद्वान अधिवक्ता आगे प्रस्तुत करता है कि मुकदमे की बहुलता से बचने और पक्षों के बीच वास्तविक विवाद के निर्धारण के लिए, संशोधन आवश्यक हैं। विद्वत विचारण न्यायालय ने गलत टिप्पणी की है कि संशोधन मुकदमे की प्रकृति को बदल सकता है और संशोधन के लिए याचिका दायर करने में बहुत देरी हुई है।

विद्वान अधिवक्ता आगे प्रस्तुत करता है कि वादी का साक्ष्य अभी शुरू हुआ है और केवल वादी की मुख्य परीक्षा दायर की गई थी। इसलिए वाद अभी भी शुरूआती चरण में है। विद्वान अधिवक्ता आगे प्रस्तुत करते हैं कि वादी द्वारा दायर याचिका को अस्वीकार करते समय पक्षकारों और विद्वान विचारण न्यायालय के बीच वास्तविक विवाद को तय करने के लिए संशोधन आवश्यक हैं और आक्षेपित आदेश को दरकिनार कर दिया जाए और वादी की याचिका को अनुमति दी जाए।

4. दूसरी ओर, उत्तरदाताओं के विद्वान अधिवक्ता याचिकाकर्ता की ओर से किए गए निवेदन का जोरदार विरोध करते हैं। विद्वान अधिवक्ता आगे प्रस्तुत करता है कि आक्षेपित आदेश में कोई त्रुटि नहीं है। याचिकाकर्ता/वादी समयबद्ध दावा पेश करना चाहता है और इस संबंध में संशोधन की मांग कर रहा है। बिक्री विलेख वर्ष 1982 में निष्पादित किए गए थे और परिपरीसीमन अधिनियम के अनुच्छेद 59 के तहत, बिक्री विलेख के खिलाफ घोषणा की मांग के लिए परिसीमन अवधि केवल 3 वर्ष है। हालाँकि, 20 से अधिक वर्षों के बाद, वादी/याचिकाकर्ता बिक्री विलेखों के निष्पादन को चुनौती देना चाहता है और यह समय बाधित है। विद्वान वकील ने आगे कहा कि इस तर्क में कोई दम नहीं है कि वादी को इसकी कोई जानकारी नहीं थी क्योंकि वादी और प्रतिवादी आपस में भाई हैं और प्रतिवादियों के विक्रेता बिक्री विलेखों के निष्पादन के बाद ही कब्जा कर चुके हैं और वादी को इस तथ्य की जानकारी पहले से ही थी, फिर भी उसने बिक्री विलेखों पर आपत्ति नहीं जताई और संशोधन के लिए आवेदन काफी देर से दायर किया और उसे अनुमति नहीं दी जा सकती। विद्वान अधिवक्ता आगे प्रस्तुत करते हैं कि वादी/याचिकाकर्ता मुकदमा शुरू होने के बाद से उचित परिश्रम दिखाने में विफल रहा है और मुकदमा शुरू होने के बाद, वादी यह समझाने के लिए कर्तव्यबद्ध था कि पहली बार में संशोधन क्यों नहीं मांगे गए थे। इस प्रकार, विद्वान अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि तत्काल याचिका में कोई योग्यता नहीं है और इसे खारिज किया जा सकता है।

5. मैंने पक्षों के प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतिकरण के साथ-साथ मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचारपूर्वक विचार किया है।

6. संहिता का आदेश VI नियम 17 निम्नानुसार है:

“17. अभिवचनों का संशोधन.— न्यायालय कार्यवाहियों के किसी भी स्तर पर किसी भी पक्ष को अपने अभिवचन को इस तरह से और ऐसी शर्तों पर बदलने या संशोधित करने की अनुमति दे सकता है जो न्यायसंगत हों, और ऐसे सभी संशोधन किए जाएंगे जो पक्षों के बीच विवाद में वास्तविक प्रश्नों का निर्धारण करने के उद्देश्य से आवश्यक हों:

बशर्ते कि मुकदमा शुरू होने के बाद संशोधन के लिए किसी भी आवेदन की अनुमति नहीं दी जाएगी, जब तक कि अदालत इस निष्कर्ष पर

नहीं पहुंचती कि उचित परिश्रम के बावजूद, पक्षकार मुकदमा शुरू होने से पहले मामले को नहीं उठा सकता था।”

7. जाहिर है, संशोधनों को मुद्दों को तैयार करने के बाद और वादी के साक्ष्य के स्तर पर पेश किया गया। प्रावधान काफी विशिष्ट है कि मुकदमा शुरू होने के बाद संशोधन की अनुमति नहीं दी जाएगी।

8. अब, प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में मुकदमे की शुरुआत का अलग-अलग अर्थ होता है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने (2006) 6 एससीसी 498 में प्रतिवेदित **बलदेव सिंह एवं अन्य बनाम मनोहर सिंह एवं एक अन्य** मामले में यह माना है कि संहिता के आदेश VI नियम 17 के परंतुक में प्रयुक्त मुकदमे की शुरुआत को सीमित अर्थों में समझा जाना चाहिए, जिसका अर्थ है मुकदमे की अंतिम सुनवाई, गवाहों की परीक्षा, दस्तावेज दाखिल करना और तर्क प्रस्तुत करना। बेशक, वर्तमान मामला वादी के साक्ष्य के चरण में है। हालाँकि, कुछ शर्तों के तहत मुकदमे की शुरुआत के बाद भी संशोधन की अनुमति दी जा सकती है।

9. यह कानून माननीय सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों द्वारा स्थापित किया गया है और हाल ही में, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1128 में प्रतिवेदित **भारतीय जीवन बीमा निगम बनाम संजीव बिल्डर्स (प्रा.) लिमिटेड**, मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 70 में संशोधन के बिंदु पर कानून का सारांश इस प्रकार दिया है:

“70. हमारे अंतिम निष्कर्ष इस प्रकार संक्षेपित किए जा सकते हैं:

(i) आदेश II नियम 2 सिविल प्रक्रिया संहिता बाद के मुकदमे के खिलाफ एक अवरोधक के रूप में कार्य करता है यदि उसके आवेदन के लिए आवश्यक शर्तें पूरी हो जाती हैं और अभिवचनों के संशोधन का क्षेत्र इसके दायरे से बहुत परे है। इस प्रकार, आदेश II नियम 2 सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत संशोधन पर रोक लगाने की याचिका गलत धारणा है और इसलिए इसे नकार दिया गया है।

(ii) सभी संशोधनों की अनुमति दी जानी चाहिए जो विवाद में वास्तविक प्रश्न का निर्धारण करने के लिए आवश्यक हैं बशर्ते कि यह दूसरे पक्ष के लिए अन्याय या पूर्वाग्रह का कारण न बने। यह अनिवार्य है, जैसा कि सिविल प्रक्रिया

संहिता के आदेश VI नियम 17 के उत्तरार्द्ध भाग में "होगा" शब्द के उपयोग से स्पष्ट है।(iii) संशोधन के लिए प्रार्थना की अनुमति दी जानी चाहिए।

(i) यदि पक्षों के बीच विवाद के प्रभावी और उचित निर्णय के लिए संशोधन की आवश्यकता है, और

(ii) कार्यवाही की बहुलता से बचने के लिए, प्रदान किया गया

(क) संशोधन के परिणामस्वरूप दूसरे पक्ष के साथ अन्याय नहीं होता है,

(ख) संशोधन द्वारा, संशोधन की मांग करने वाले पक्ष पक्ष द्वारा की गई किसी भी स्पष्ट स्वीकारोक्ति को वापस लेने की कोशिश नहीं करते हैं जो दूसरी तरफ अधिकार प्रदान करता है और

(ग) संशोधन एक समयबद्ध दावे को नहीं उठाता है, जिसके परिणामस्वरूप एक मूल्यवान अर्जित अधिकार (कुछ स्थितियों में) के दूसरे पक्ष का विनिवेश होता है।

(iv) संशोधन के लिए आम तौर पर अनुमति देने की आवश्यकता है जब तक कि

(i) संशोधन द्वारा, एक समयबद्ध दावा पेश करने की मांग की जाती है, जिस स्थिति में यह तथ्य कि दावा समयबद्ध होगा, विचार के लिए एक प्रासंगिक कारक बन जाता है।

(ii) संशोधन वाद के प्रकृति को बदल देता है,

(iii) संशोधन के लिए प्रार्थना दुर्भावनापूर्ण है, या

(iv) संशोधन द्वारा, दूसरा पक्ष एक वैध बचाव खो देता है।

(v) अभिवचनों के संशोधन के लिए एक प्रार्थना से निपटने में, न्यायालय को एक अति-तकनीकी दृष्टिकोण से बचना चाहिए, और आमतौर पर उदार होने की आवश्यकता होती है, विशेष रूप से जहां विरोधी पक्ष को लागत द्वारा क्षतिपूर्ति की जा सकती है।

(vi) जहां संशोधन न्यायालय को विवाद पर स्पष्ट रूप से विचार करने में सक्षम बनाएगा और अधिक संतोषजनक निर्णय देने में सहायता करेगा, वहां संशोधन के लिए अनुरोध की अनुमति दी जानी चाहिए।

(vii) जहां संशोधन केवल कार्रवाई के लिए एक समयबद्ध कारण पेश किए बिना एक अतिरिक्त या एक नया दृष्टिकोण पेश करने का प्रयास करता है, तो संशोधन की अनुमति परिसीमन समाप्त होने के बाद भी दी जा सकती है।

(viii) संशोधन की अनुमति न्यायसंगत रूप से दी जा सकती है जहां इसका उद्देश्य वाद में सामग्री विवरणों की अनुपस्थिति को ठीक करना है।

(ix) केवल संशोधन के लिए आवेदन करने में देरी प्रार्थना को अस्वीकार करने का आधार नहीं है। जहां विलंब का पहलू तर्क योग्य है, संशोधन के लिए प्रार्थना की अनुमति दी जा सकती है और निर्णय के लिए परिसीमन का मुद्दा अलग से तैयार किया जा सकता है।

(x) जहां संशोधन मुकदमे की प्रकृति या कार्रवाई के कारण को बदल देता है, ताकि एक पूरी तरह से नया मामला स्थापित किया जा सके, जो वाद में स्थापित मामले से अलग हो, तो संशोधन की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। हालाँकि, जहाँ माँगा गया संशोधन केवल वाद में राहत के संबंध में है, और उन तथ्यों पर आधारित है जो पहले से ही वाद में प्रस्तुत किए गए हैं, वहाँ आम तौर पर संशोधन की अनुमति दी जानी आवश्यक है। (xi) जहाँ मुकदमा शुरू होने से पहले संशोधन की मांग की जाती है, वहाँ न्यायालय को अपने दृष्टिकोण में उदार होना आवश्यक है। अदालत को इस तथ्य को ध्यान में रखना आवश्यक है कि विरोधी पक्ष को संशोधन में स्थापित मामले को पूरा करने का मौका मिलेगा। इस प्रकार, जहां संशोधन के परिणामस्वरूप विरोधी पक्ष के प्रति अपूरणीय पूर्वाग्रह नहीं होता है, या विरोधी पक्ष को उस लाभ से वंचित नहीं करता है जो उसने संशोधन की मांग करने वाले पक्ष द्वारा स्वीकार किए जाने के परिणामस्वरूप प्राप्त किया था, तो संशोधन की अनुमति देने की आवश्यकता होती है। समान रूप से, जहां अदालत के लिए पक्षों के बीच विवाद के मुख्य मुद्दों पर प्रभावी ढंग से निर्णय लेने के लिए संशोधन आवश्यक है,

वहां संशोधन की अनुमति दी जानी चाहिए।(विजय गुप्ता बनाम गगनिंदर के. आर. गांधी, 2022 एस. सी. सी. ऑनलाइन डेल 1897 देखें।)''

10. एक सामान्य नियम के रूप में, सभी संशोधनों की अनुमति दी जानी चाहिए जो पक्षों के बीच वास्तविक विवाद के निर्धारण के लिए आवश्यक हैं।माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने *एल.जे. लीच एंड कंपनी लिमिटेड बनाम जार्डिन स्किनर एंड कंपनी* के मामले में, जो *एआईआर 1957 एससी 357* में प्रतिवेदित हुआ था, यह माना है कि न्यायालय, एक नियम के रूप में, संशोधनों की अनुमति देने से इनकार कर देंगे, यदि संशोधित दावे पर नया मुकदमा, आवेदन की तिथि पर समय परिसीमन द्वारा वर्जित हो। लेकिन यह एक ऐसा कारक है जिसे विवेकाधिकार का प्रयोग करते समय ध्यान में रखा जाना चाहिए कि संशोधन का आदेश दिया जाना चाहिए या नहीं, और यह न्यायालय के आदेश देने के अधिकार को प्रभावित नहीं करता है, यदि न्याय के हित में ऐसा आवश्यक हो। इसी तर्ज पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ का निर्णय भी है *टी.एन. अलॉय फाउंड्री कंपनी लिमिटेड बनाम टी.एन. इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड* के मामले में *(2004) 3 एससीसी 392* में प्रतिवेदित किया गया है जिसमें यह माना गया है कि दलीलों में संशोधन के लिए आवेदन को केवल इसलिए अस्वीकार नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि इसका विरोध इस आधार पर किया गया है कि यह समय-परिसीमन द्वारा वर्जित है, इसके विपरीत, आवेदन पर उस विवेकाधिकार को ध्यान में रखते हुए विचार किया जाना चाहिए जो न्याय के हित में ऐसे संशोधन को अनुमति देने या अस्वीकार करने में न्यायालय के पास निहित है।

11. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने *पंकजा एवं एक अन्य बनाम येलप्पा (मृत) अधिवक्तों तथा अन्य* द्वारा *(2004) 6 एससीसी 415* में प्रतिवेदित मामले में निम्नलिखित निर्णय दिया:

“14. इस संबंध में कानून भी काफी स्पष्ट और सुसंगत है कि कोई पूर्ण नियम नहीं है कि हर मामले में जहां परिसीमन के कारण राहत पर रोक है, एक संशोधन की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।ऐसे मामलों में विवेकाधिकार मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है।संशोधन की अनुमति देने या न देने की अधिकारिता विवेकाधीन होने के कारण, इसका उपयोग उन तथ्यों और परिस्थितियों के विवेकपूर्ण मूल्यांकन पर किया जाना चाहिए जिनमें संशोधन की मांग की गई है।यदि किसी संशोधन को मंजूरी देना वास्तव में न्याय के अंतिम उद्देश्य को कम करता है और आगे की

मुकदमेबाजी से बचाता है तो इसकी अनुमति दी जानी चाहिए। अभिवचन के संशोधन की अनुमति देने या अस्वीकार करने के लिए कोई सीधा सूत्र नहीं हो सकता है। प्रत्येक मामला उस मामले की तथ्यात्मक पृष्ठभूमि पर निर्भर करता है।

16. इस न्यायालय के इस दृष्टिकोण का अनुसरण, तब से, इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ द्वारा टी.एन. अलॉय फाउंड्री कंपनी लिमिटेड बनाम टी.एन. इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड [(2004) 3 एससीसी 392] के मामले में किया गया है।। इसलिए, अभिवचन के संशोधन के लिए आवेदन को केवल इस आधार पर अस्वीकार नहीं किया जाना चाहिए कि इसका विरोध इस आधार पर किया जाता है कि यह परिसीमन द्वारा वर्जित है, इसके विपरीत, आवेदन को उस विवेकाधिकार को ध्यान में रखते हुए माना जाना चाहिए जो न्याय के हित में इस तरह के संशोधन की अनुमति देने या अस्वीकार करने में अदालत के पास निहित है।

12. मामले के तथ्यों पर वापस आते हुए, वादी का दावा है कि उसे जानकारी नहीं थी और इसलिए, संशोधन याचिका वादी को वर्ष 2014 में इस तथ्य के बारे में पता चलने के बाद समय के भीतर दायर की गई है। दूसरी ओर, प्रतिवादियों का दावा है कि वादी को 1994 से ही बिक्री विलेखों की जानकारी थी। यदि वादी का तर्क सही माना जाता है, तो संशोधन की मांग परिसीमन अवधि के भीतर की गई है। इन परिस्थितियों में, परिसीमन अवधि के विवादित होने की दलील को संशोधन की अनुमति देने के बाद मुद्दे का विषय बनाया जा सकता है और मैं रागु थिलक डी. जॉन बनाम एस. रायप्पन (2001) 2 एससीसी 472 में प्रतिवेदित मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करता हूँ।

13. चूंकि वादी/याचिकाकर्ता ने परिसीमन के बिंदु पर एक विवादित प्रश्न उठाया है, इसलिए परिसीमन के संबंध में उचित मुद्दा तैयार करने के बाद विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा इस पर विचार किया जा सकता है। इस आधार पर, मांगे गए संशोधन को अस्वीकार नहीं किया जा सकता था।

14. जहाँ तक उचित परिश्रम पहलू का संबंध है, यह सच है कि मुकदमा शुरू हो गया है और वादी यह दिखाने के लिए कर्तव्यबद्ध था कि वह संशोधन पहले नहीं ला

सकता था, लेकिन फिर भी यह एक तथ्य है कि वादी ने अपनी शिकायत के पैराग्राफ 9 में बिक्री विलेखों के निष्पादन के बारे में उल्लेख किया है। यह परिणामी राहत है जिसकी मांग की जा रही है और इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता कि उक्त राहत को संशोधन के माध्यम से राहत वाले भाग में शामिल नहीं किया जा सकता क्योंकि यह पक्षों के बीच वास्तविक विवाद के निर्धारण के लिए आवश्यक प्रतीत होता है। यह वादी की ओर से उचित परिश्रम की कमी से संबंधित आपत्ति का समाधान करता है।

15. इसके अलावा, मामले के तथ्यों से, यह स्पष्ट है कि संशोधन वादी के साक्ष्य के स्तर पर मांगे गए हैं, लेकिन यह वादी का मुकदमा है और यदि कोई देरी होती है, तो अंततः वादी पीड़ित होगा। यह नहीं कहा जा सकता है कि इस स्तर पर संशोधन की अनुमति देने से दूसरे पक्ष के साथ अन्याय होगा क्योंकि यह अभी भी वादी के साक्ष्य की शुरुआत के चरण में है।

16. इसके अलावा, संशोधन आवेदन के केवल अवलोकन से, मुझे नहीं लगता कि संशोधन की अनुमति देने से वाद की प्रकृति बदल जाएगी। स्वामित्व की घोषणा के लिए मुकदमा दायर किया गया है और यदि बिक्री विलेखों को अलग रखे बिना, बिक्री विलेखों को वाद भूमि के संबंध में निष्पादित किया जाता है, तो स्वामित्व का अंतिम निर्धारण नहीं हो सकता है। इसलिए, मेरे विचार में, मुकदमे की प्रकृति में परिवर्तन के संबंध में विद्वत विचारण न्यायालय का निष्कर्ष गलत है। यदि संशोधन की अनुमति नहीं दी जाती है, तो इससे मुकदमेबाजी की अनावश्यक बहुलता होगी। पक्षों के बीच वास्तविक विवाद के निर्धारण के उद्देश्य से भी संशोधन आवश्यक प्रतीत होते हैं।

पंकजा (उपरोक्त) का पैरा 18 बिल्कुल उपयुक्त है:

“18. हम समझते हैं कि रागु तिलक डी. जॉन मामले में इस न्यायालय द्वारा अपनाया गया मार्ग इस मामले के तथ्यों पर उचित रूप से लागू होता है। निचली अदालतें इस धारणा पर आगे बढ़ी हैं कि अपीलकर्ताओं द्वारा मांगा गया संशोधन वास्तव में परिसीमन कानून द्वारा वर्जित है और वादी द्वारा मूल वाद में मांगी गई राहत की तुलना में अलग राहत की शुरुआत के बराबर है। हम नीचे दी गई अदालतों से सहमत नहीं हैं कि वादी द्वारा मांगे गए संशोधन में एक अलग राहत दी गई है ताकि संशोधन के लिए प्रार्थना के अनुदान को रोका जा सके, शीर्षक के संबंध में शिकायत में आवश्यक तथ्यात्मक आधार

पहले ही निर्धारित किया जा चुका है, जिसे निश्चित रूप से प्रतिवादी द्वारा अपने लिखित बयान में अस्वीकार कर दिया गया था, जो एक विचारण में तय किया जाने वाला मुद्दा होगा। इसलिए, इस मामले के तथ्यों में, इस निष्कर्ष पर पहुंचना गलत होगा कि संशोधन द्वारा वादी एक अलग राहत पेश करेगा।

17. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, मेरा यह सुविचारित मत है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने संशोधन याचिका को स्वीकार करने से इनकार करके अधिकार क्षेत्र में त्रुटि की है और उसे खारिज कर दिया है। अतः, मैं दिनांक 08.09.2016 के आदेश को विधि की दृष्टि से मान्य नहीं पाता और तदनुसार, उसे अपास्त किया जाता है। फलस्वरूप, विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष दायर दिनांक 04.08.2016 का आवेदन स्वीकार किया जाता है।

18. हालाँकि, उत्तरदाता को वादी/याचिकाकर्ता के दावे का खंडन/विरोध करने का पर्याप्त अवसर दिया जाएगा, जिसे संशोधन के माध्यम से लिखित बयान/अतिरिक्त लिखित बयान दाखिल करके लाया जाना है और विद्वान विचारण न्यायालय परिसीमन के संबंध में आवश्यक मुद्दा तय करेगी।

19. नतीजतन, तत्काल याचिका की अनुमति दी जाती है।

(अरुण कुमार झा, न्यायमूर्ति)

वी.के.पाण्डे/-

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।